INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND INTERDISCIPLINARY STUDIES
(Peer-reviewed, Refereed, Indexed & Open Access Journal)
DOI : 03.2021-11278686 ISSN : 2582-8568 IMPACT FACTOR : 6.865 (SJIF 2023)

'नैषधीयचरित' महाकाव्य में काव्यरसाभिव्यक्ति
(Rasabhivyakti in the epic 'Naishadhiyacharita')

श्याम प्यारी पटेल
शोध–छात्रा
मड़ियाहूँ पी जी कालेज मड़ियाहूँ,
जौनपुर (उत्तरप्रदेश, भारत)

DOI No. 03.2021-11278686 **DOI Link ::** https://doi-ds.org/doilink/02.2023-99664536/IRJHIS2302016

शोध सारांश :

संस्कृत में रस की उत्पत्ति 'रस्यते इति रसः' के रूप में दी गई है। अर्थात् जिसमें आस्वाद मिले वही रस है। 'रस' शब्द का प्रयोग अनादि काल से भिन्न– भिन्न अर्थों में होता आया है। दर्शन जीवन–दर्शन, योगदर्शन से लेकर है। उपनिषदों में, रस ब्रह्म या ब्रह्मानंद का वाचक है। आयुर्वेद में रस शब्द औषधी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। काव्यशास्त्र में रस शब्द एक अनिर्वचनीय साहित्यिक आनंद के रूप में प्रयुक्त हुआ है। रस खुश और दुखात्मक होता है। पाठक और श्रोता के मन में, जो एक विशेष प्रकार की अवर्णनीय, अदृश्य या अमूर्त भावना के रूप में स्वतः प्रकाशित हो जाती है, उसी का नाम वास्तव में रस है। इसका कोई मूर्त या मूर्त रूप नहीं है।

महत्वपूर्ण शब्द : *आयुर्वेद, औषधी, रस, आनंद, अभिव्यक्तिवाद, अभिधा, संयोगात्, नल, दमयन्ती, स्वयंवर, शरीरज, सत्वज, स्वभावज, स्वर्णहंस, उत्कृष्ट।*

प्रस्तावना :

संस्कृत में रस की उत्पत्ति 'रस्यते इति रसः' के रूप में दी गई है। अर्थात् जिसमें आस्वाद मिले वही रस है। 'रस' शब्द का प्रयोग अनादि काल से भिन्न – भिन्न अर्थों में होता आया है। दर्शन जीवन–दर्शन, योगदर्शन से लेकर है। उपनिषदों में, रस ब्रह्म या ब्रह्मानंद का वाचक है। आयुर्वेद में रस शब्द औशधी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। काव्यशास्त्र में रस शब्द एक अनिर्वचनीय साहित्यिक आनंद के रूप में प्रयुक्त हुआ है। रस खुश और दुखात्मक होता है। पाठक और श्रोता के मन में, जो एक विशेष प्रकार की अवर्णनीय, अदृश्य या अमूर्त भावना के रूप में स्वतः प्रकाशित हो जाती है, उसी का नाम वास्तव में रस है। इसका कोई मूर्त या मूर्त रूप नहीं है।

संस्कृत काव्यशास्त्र में रस–सामग्री या उपकरण के आधार पर भी रस के स्वरुप की व्याख्या की गयी है। रस–सिद्धांत के प्रथम आचार्य भरत ने सूत्र रूप में अनुभाव, विभाव और संचारी भाव के रस निश्पत्ति का उल्लेख किया है –''विभावानुभविव्यभिचारीसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः''1 सूत्रात्मक शैली के कारण भरत–निर्धारित रस–स्वरूप अस्पष्ट ही रह गया था। परिणामस्वरूप, इस नियम के प्रतिपादन का प्रश्न उठा और भट्ट, लोल्लत, शुंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त आदि जैसे आचार्यों ने अनेक नियमो का प्रतिपादन कर 'रस–निश्पत्ति' की व्याख्या की। मम्मत की दृष्टि में लोक–जीवन में रुति आदि की स्थायी भावों के जिन्हे कारण, कार्य और सहकारी कारण कहा जाता है, उन्हें ही नाट्य और काव्य में क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहते है। इन उपादानों से व्यक्त स्थायी भाव को रस कहते है।

आचार्य विश्वनाथ ने रस के सन्दर्भ मे लिखा है, "विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के मिलन से लोगों के हृदय में निवास करने वाली रति, भोक, हास आदि की स्थायी भाव ही रस के रूप में प्रकट हो जाता है।"[2]

स्पष्ट है कि विश्वनाथ की दृष्टि में स्थायी भाव ही अस्वाद को धारण कर लेता है। इसकी स्पष्टता के लिए वि वनाथ ने बिल्कुल नया उदाहरण प्रस्तुत करते है, जैसे दूध, मट्ठे की सहायता से दही में परिवर्तित हो जाता है, वैसे ही विभावदी की सहायता से स्थायी भाव रस दशा में बदल जाता है। भट्ट लोल्लत के अनुसार, "रस की स्थिति मुख्यतः तो अनुकार्य रामादि मे है, पर उन्हीं के रुप का अभिनेता होने के कारण, अनुकर्ता नटों में भी सामाजिकों को रस–प्रतीति होती है।"3 भट्ट लोल्लत की दृश्टि में सामाजिकों को रसानुभूति अपने मे नही होती है, बल्कि उन अनुकर्ता नटों में होती है, जिन पर ऐतिहासिक पात्रों का आरोप किया जाता है। इस आरोप के फलस्वरूप सामाजिक स्वयं भी चमत्कृत होकर आनंद का अनुभव करता है।

अभिनव गुप्त द्वारा प्रस्तुत भारत–सूत्र की व्याख्या को अभिव्यक्तिवाद के नाम से प्रसिद्ध है। अभिनवगुप्त रस को पूर्णतः सामाजिकगत मानते थे। उनके अनुसार अभिधा से काव्यार्थ का बोध होता है, फिर अभिव्यंजना के विभावना आदि व्यापारों से सामान्यीकरण होता है। अभिनव गुप्त ने रस–सूत्र के 'संयोगात्' का अर्थ 'व्यंग्य व्यंजक सम्बन्धात्' किया है। इनके अनुसार विभावादी व्यंजक होते हैं और रस व्यंग्य है। निश्पत्ति का अर्थ वे अभिव्यक्ति मानते हैं, उनके अनुसार, "रति, हास आदि स्थायी भाव सामाजिकों के अन्तःकरण में वासनात्मक संस्कार के रूप में पूर्णतः विद्यमान रहते हैं। काव्य के श्रवण और नाटक के दर्शन से सहृदयों के मनोगत स्थायी भावों का विभावादि के साथ संयोग होता और वे सुप्त स्थायी भाव ही रस रुप में अभिव्यक्त ही जाते हैं। रस निश्पत्ति की इसी प्रक्रिया में विभावादि व्यंजक होते है और रस व्यंग।''[4]

संस्कृत महाकाव्यों में रस अपने श्रेश्ठ रुप में प्रतिष्ठित हुआ है। श्रीहर्ष, कालिदास, भास हों या भारवि के महाकाव्यो में रस की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। 'नैशधीयचरित' महाकाव्य का अंगीरस श्रृंगार है, यहॉ श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग एवं वियोग की अभिव्यक्ति हुई है। नल और दमयन्ती के अनुराग के वर्णन में कवि ने पूर्वानुराग के अंतर्गत दमयन्ती की चिंता, स्मृति और इच्छा इन अवस्थाओं का सटीक चित्रण है। स्वयंवर के समय नल पर माला पहनाती हुई दमयन्ती भाव प्रवाह में त्वराजनित वुग और त्रपाजनित अवरोध का चित्रण सुन्दर है। सखी का रूप धारण किये हुए सरस्वती उपन्यास में उसका हाथ पकड़कर खींचकर राजा की ओर ले जाती है, और दमयन्ती जिस प्रकार संभ्रम पुर्वक अपना हाथ छुड़ाती है, उसमें प्रेम के संचारी भावों – भय, त्रास, असूया आदि का रमणीय चित्र प्रस्तुत किया गया हैं। स्वयंवर प्रसंग के बाद कवि ने नल और दमयन्ती के संयोग

का विशद् निरुपण किया है। इस वर्णन में कवि ने दमयन्ती के शरीरज, सत्वज और स्वभावज–तीनों प्रकार के अलंकारों को गूँथ दिया है नायक और नायिका के परिहास के चित्रण में हास्य रस श्रृंगार का पोषण बन गया है।

दमयन्ती के स्वयंवर में आये राजाओं तथा इन्द्रादि देवों की उसके प्रति रति अनुभयनिष्ठ होने से श्रृंगार रस का भास में परिणत हो जाती है। दमयन्ती के प्रति उसके माता–पिता के स्नेह का छायान्कन करके कवि ने भावध्वनि या वात्सल्य को भी मनोहर अभिव्यंजना प्रदान की है। नल के द्वारा पकड़ लिए जाने पर हंस की उक्तियों में करूण रस की निष्पत्ति भी बड़ी प्रभावशाली है। हंस कहता है –

"मदेक पुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधे त्वां करूणा रूणद्धि नौ।।"[5]

अर्थात् मैं अपनी माँ की एकमात्र संतान हूँ। मेरी माँ वृद्धावस्था से आकुल है। मेरी हंसिनी ने अभी–अभी चूजे जन्मे हैं। इन दोनों का मैं ही अकेला सहारा हूँ। हे विधाता, ऐसे मुझको मारते हुए क्या तुम्हें करूणा रोक नहीं रही?

नल के गुणों के निरूपण में वीर रस के चारों प्रकार– दयावीर, दानवीर, युद्धवीर तथा धर्मवीर 'नैषधीयचरित' में व्यक्त हुए हैं। स्वर्णहंस को देखकर नल और दमयनती के कौतुक के चित्रण में अद्भुतरस भी है। नल और दमयन्ती के प्रथम साक्षात्कार में दोनों एक–दूसरे को देखकर जिस प्रकार विस्मयाविष्ट और कौतुक से आकुल हो जाते हैं। उस प्रसंग में अद्भुत रस श्रृंगार का अंग बनकर आया है। कीकटाधिप आदि स्वयंवर समागत राजाओं के वर्णन में भी कवि ने कुशलता से हास्यरसान्वित अद्भुत का विन्यास कर दिया है। देवों के नल के समान बनकर उसके आस–पास बैठ जाना और अन्त में स्वयंवर हो जाने पर प्रकृति रूप में आना प्रसंग में भी अद्भुत की अन्तर्धारा है।

श्रीहर्ष में भावाभिव्यक्ति की अदभुद शक्ति है। उनकी कल्पना की ऊँची उड़ान भावों को मनोरम और सुकुमार बना देती है। यद्यपि भावों में गाम्भीर्य है, किन्तु अभिव्यक्ति के साथ उनका सौन्दर्य निखर उठता है। भवितव्यता और मानव हृदय के मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध को कितने सरल और भावपूर्ण शब्दों में व्यक्त किया गया है।

"अवश्यभव्ये-वनवग्रहग्रहा,
यथा दिशा धावति वेधसः स्पृहा।
तृणेन वात्येव तया–नुगम्यते,
जनस्य चिन्तेन भृशा.वशात्मना।।"[6]

अवश्यंभावी विषयों में विधि की इच्छा जिस ओर जाती है, विवश होकर मनुष्य का चित्त भी उसी ओर जाता है, जैसे आँधी के साथ तिनका।

एक उच्च कोटि की कल्पना का निदर्शन इस प्रकार हुआ है। कालरूपी किरात ने दिन रूपी हाथी का वध किया है और उसके खून की धारा मानो लाल सन्ध्या है और उसके मस्तक के मोती ही मानो तारे रूप में बिखर गये हैं।

"कालः किरातः स्फुटपंधकस्य,

वधं व्यधाद् यस्य दिनाद्विपस्य।

तस्येव सन्ध्या रूचिरासृधारा,

ताराश्च कुम्भस्थलमौक्तिकानि।।"[7]

नल के तीव्रगामी घोड़े आधे आकाश तक पहुँचकर इसलिए लज्जित होकर लौट आये कि विष्णु ने एक पैर से आकाश को नाप लिया था, हम चार पैरों से क्यों नापें?

"हरेर्यदक्रामि पदैककेन खं,

पदैश्चतुर्भिः क्रमणेऽपि तस्य नः।

त्रपा हरीणामिति नम्रिताननै,

र्न्यवर्ति तैरर्धनभः कृतक्रमैः।।"[8]

'नैषधीयचरित' महाकाव्य में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुंदर वर्णन हुआ है। संयोग–पक्ष अत्यन्त व्यापक है। अन्य रसों का अल्प मात्रा में यथास्थान प्रयोग है। यद्यपि श्रीहर्ष में कालिदास जैसा रस–परिपाक नहीं है, फिर भी भाव–प्रवणता का प्राचुर्य है। सर्ग 12 और 13 में आयोजन में आये हुए राजाओं के वर्णन में वीर रस का प्रयोग मिलता है और सोलहवें सर्ग में हास्यरस का पुट भी यत्र–तत्र प्राप्त होता है।

श्रीहर्ष ने अट्ठारहवें सर्ग में विवाह के बाद नल–दमयन्ती के प्रथम मिलन का विस्तृत वर्णन दिया है। प्रथम समागम का एक प्रसंग इस प्रकार है–

"वल्लभस्य भजयोः स्मरोत्सवे,

दित्सतोः प्रसभमंकपालिकाम्।

एककाश्चिरमरोधि बालया,

तल्पयन्त्रण निरन्तरालया।"[9]

विवाह से पूर्व नल–विषयक रति से परिपीड़ित दमयन्ती सूर्य की किरणों से श्रीणप्रभ चन्द्रकला के तुल्य कृश हो गयी थी और वह किसे दयार्द्रचित्त नहीं कर देती थी?

"इयमनगंशरावलिपन्नग,

क्षतविसारि वियोग विषावशा।

शशिकलेव खरांशुकरार्दिता,

करूणनीर निधौ निदधौनकम्।।"[10]

"ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा,

त्वचा विचित्रांगि विपद्यतेयदि।

तदा•स्मि दैवेन हतो•पि हाहतः

स्फुट यतस्ते शिशवः परासवः।।"[11]

हे दविः यदि मेरे वियोग में तुम मर जाओगी तो बेचारे वे छोटे बच्चे भी मर जायेंगे और भाग्य का मारा मैं अधिकाधिक मारा जाऊगाँ।

श्रीहर्ष के महाकाव्य 'नैषध' में कल्पना की ऊँची उड़ान भी दिखाई देती है। नल की दिग्विजय–यात्राओं

में जो धूल–राशि समुद्र में जाकर गिरी थी। वही कीचड़ होकर समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा में कलंक के रूप में दिखाई पड़ती है–

"यदस्य यात्रासु बलोद्धत रजः,
स्फुरत्प्रतापानलधूममाज्जिम।
तदेव गत्वा पतित सुधाम्बुधौ,
दधाति पंकीभवदंकतां विधौ।।"[12]

अतः माना जा सकता है कि श्रीहर्ष के महाकाव्य 'नैषधीयचरित' में रसों की अभिव्यक्ति 'उत्कृष्ट' रूप मे हुई है। इसका अंगीरस श्रृंगार तो है ही, साथ में अन्य रसों की भी अभिव्यक्ति सुन्दरतम् रूप में देखने को मिलती है। यहाँ वीर, करूण, हास्य आदि अंगीभूत रस भी है। महाकवि की भाषा में भी प्रौढ़ता का परिष्कार है, उनकी भाषा दुरूह से दुरूह भावों को प्रकट करने की असाधारण क्षमता है। भाषा प्रांजल, सरस, प्रवाहयुक्त, ध्वन्यात्मक और लयात्मक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. पाठक, डॉ. बालमुकुन्द – भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना, विद्यार्थी पुस्तक भण्डार, गोरखपुर, संस्करण–1996, पृ.–108.
2. पाठक, डॉ. बाल मुकुन्द – भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना, विद्यार्थी पुस्तक भण्डार, गोरखपुर, संस्करण –1996, पृ.–108
3. त्रिगुणायत, डॉ. गोविन्द – शास्त्रीय समक्षा के सिद्धान्त, पृ.–208.
4. चौधरी, डॉ. सच्चिदानन्द – हिन्दी काव्यशास्त्र में रस सिद्धान्त, पृ.–140.
5. शास्त्री, डॉ. देवर्षि सनाढ्य – अनु. – महाकवि श्रीहर्ष विरचितम् नैषधीयचरितम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण–2013, श्लोक–1/135.
6. पाठक, डॉ. बाल मुकुन्द – भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना, विद्यार्थी पुस्तक भण्डार, गोरखपुर, संस्करण–1996, पृ.–108
7. शास्त्री, डॉ. देवर्षि सनाढ्य अनु. – महाकवि श्रीहर्ष विरचितम् नैषधीयचरितम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण–2013, पृ.–भूमिका से।
8. शास्त्री, डॉ. देवर्षि सनाढ्य – हिन्दी व्याख्याकार श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण–2013, श्लोक–1/70.
9. शास्त्री, डॉ. देवर्षि सनाढ्य अनु. – महाकवि श्रीहर्ष विरचितम् नैषधीयचरितम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण–2013, श्लोक–18/31
10. वही, लोक–2/33
11. शास्त्री डॉ देवर्षि सनाढ्य – अनु. महाकवि श्रीहर्ष विरचितम् नैषधीयचरितम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण–2013, श्लोक–1/140.
12. शास्त्री, डॉ देवर्षि सनाढ्य – अनु. – महाकवि श्रीहर्ष वरिचितम् नैषधीचरितम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्कसरण–2013, श्लोक–14/55.